|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 3: कर्मयोग

4/4 (श्लोक 21-43), शनिवार, 31 दिसंबर 2022

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/CJDT2k-KtDQ

कर्मयोग की व्याख्या

आज के सत्र का आरंभ दीप प्रज्वलन और गुरु वंदना से हुआ। बिना गुरु के कुछ संभव नहीं होता। हर व्यक्ति यही चाहता है कि एक श्रेष्ठ गुरु अगर हमारे जीवन में आए और वह हमारी उँगली पकड़कर उचित मार्गदर्शन करें। गुरु-शिष्य की यह परंपरा बहुत प्राचीन है। श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। '

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्"।

यह कल-कल छल-छल बहती, क्या कहती गंगा धारा ।
युग-युग से बहता आता, यह पुण्य प्रवाह हमारा ।।

भगवद्गीता मूलतः कर्मयोग के लिए ही कही गई है। अर्जुन कर्म से विमुख हो गया था और पलायन वादी हो चुका था, अपने कर्मों को छोड़कर संन्यास लेकर यह वन में जाना चाहता था। भगवद्गीता का उपदेश भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिया क्योंकि अर्जुन बहुत पराक्रमी था। जीवन में पराक्रम करना हो तो कर्म करना चाहिए। कर्म वृद्धि को लाएगा लेकिन जीवन समृद्ध होना चाहिए। जीवन में वृद्धि के साथ समृद्धि भी लानी होगी। वृद्धि और समृद्धि में जो अंतर है, वह कर्म और कर्मयोग का अंतर है। कर्म में जब योग शब्द जुड़ जाता है तो वह केवल कर्म नहीं रहता वह कर्मयोग बन जाता है। भगवान ने यह नहीं कहा कि हम जो काम कर रहे हैं, वह नहीं करना है। क्या काम करने से हमारा कर्म, कर्मयोग बन जाएगा यह भगवान ने गीता में बताया है। भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू कुछ और काम मत कर। अर्जुन, जो एक वीर, पराक्रमी योद्धा था, उसे युद्ध करने के लिए ही भगवान कह रहे थे। भगवान ने उसको जप, ध्यान और साधना के लिए नहीं कहा था, युद्ध करने के लिए कहा। लेकिन वह स्वार्थ के लिए नहीं होना चाहिए। समष्टि के कल्याण का विचार होना चाहिए। स्वार्थ रहित कर्म होना चाहिए अर्जुन को लग रहा था कि वह युद्ध स्वार्थ के लिए कर रहा है। युद्ध जीतकर उसके बड़े भाई राजा बनेंगे। लेकिन भगवान कृष्ण का उद्देश्य कुछ और था।

भगवान ने अर्जुन से कहा क्षत्रिय का धर्म होता है कि इस धरा को पापियों से मुक्त कर दे। दुर्योधन, दुःशासन और उनका साथ देने वाले सभी गुरुजनों का साथ देना भी गलत काम है। गलत काम करने वालों के साथ खड़े रहने वाले भी, चाहे वह पितामह हो या आचार्य द्रोण, वे सब भी गलत ही हैं। जो दुःशासन केश पकड़कर खींचते हुए भरी सभा में द्रौपदी को लेकर आया और जिस दुर्योधन ने भरी सभा में दुःशासन से द्रौपदी को निर्वस्त्र करने के कहा। ऐसे आततायी दुष्ट प्रवृत्ति के लोग इस धरा पर से चले जाने चाहिए।

केवल तुम्हारी पत्नी का चीरहरण हुआ इसके लिए नहीं बल्कि राज्य की हर महिला की सुरक्षा करना क्षत्रिय का कर्तव्य होता है इसलिए तुम्हें युद्ध करना पड़ेगा और इस धरा को इन पापियों से मुक्त करना पड़ेगा। इस समाज को इनसे संरक्षण प्राप्त करना ही होगा इसलिए यह तुम्हारा व्यक्तिगत युद्ध नहीं है, यह धर्म युद्ध है।

हमें हमारे मन के भाव बदलने पड़ते हैं। एक गृहिणी, जो रसोईघर में रसोई बनाती है। उसके भाव जब व्यक्तिगत होते हैं जैसे वह रसोई अपने पति, अपने बच्चों, सास - ससुर और अपने लिए ही बनाती है तो यह सीमित बात हुई। लेकिन मन के भाव बदलने से जब वह रसोई भगवान के लिए बनाती है और मन में यह भाव रखती है कि मैं भगवान को भोग लगाऊंगी। काम रसोई का है लेकिन अर्थ बदल गए। यह रसोई सिर्फ मेरे लिए नहीं है। यह भगवान के लिए है। जब भगवान को भोग लगाऊंगी, उसका कुछ ऐसा प्रकृति का भी है। केवल पुरुष से जन्म नहीं हुआ। प्रकृति ने भी साथ दिया इसलिए इस प्रकृति में जो अन्य घटक है, उनके लिए भी मेरी रसोई है। एक रोटी गाय के लिए, एक रोटी उन पक्षियों के लिए, एक रोटी कुत्ते के लिए, एक रोटी याचक के लिए (जो भूखा है) तभी वह पूर्ण होगा। मेरी रसोई व्यक्तिगत नहीं मेरी रसोई समष्टिगत है।

मैं अपने घर की सफाई कर रहा हूँ। मन में अगर यह भाव आता है तो वह कर्म स्वार्थ बन गया और मन में अगर यह भाव आ जाएगा कि यह घर नहीं एक मंदिर है और मंदिर को साफ सुथरा रखना मेरा कर्त्तव्य है तो वह कर्म समष्टिगत बन जाता है।

एक बार भारत के उद्योगपति जापान में वहाँ के उद्योगों का मुआयना करने के लिए इस उद्देश्य से जापान गये कि वहाँ प्रगति कैसे हो रही है? कई कारखानों को देखा। एक दुभाषिए ने जापान के सफाई कर्मचारी से पूछा,आप क्या काम करते हैं? तो सफाई कर्मचारी ने कहा कि वह देश की अर्थव्यवस्था को समृद्ध कर रहा है। उसका जवाब सुनकर सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे,फिर पूछने लगे कि तुम्हारा अर्थमंत्री क्या कर रहा है, यह नहीं जानना चाहता, तुम क्या कर रहे हो, यह पूछ रहे हैं। जापान के सफाई कर्मचारी ने फिर कहा कि मैं अर्थमंत्री की बात नहीं कर रहा, मैं अपनी बात कर रहा हूँ। मैं अपनी बात को समझाता हूँ। मेरा काम तो यहाँ के शौचालय साफ करने का है लेकिन यह सब मैं मन लगाकर साफ करता हूँ। मैंने यहाँ पर बगीचे से फूल भी लाकर लगा रख दिए हैं। क्योंकि जब मेरे कारखाने के कर्मचारी यहाँ पर आए तो यहाँ से प्रसन्न होकर जाएँ और कारखाने में ज्यादा मेहनत से काम करें जिससे हमारा उत्पाद और भी अच्छा होगा फिर वह निर्यात होगा उससे हमारे देश में विदेशी मुद्रा भंडार समृद्ध होगा इससे हमारा देश समृद्ध बनेगा। सफाई कर्मचारी का काम तो सफाई करने का था लेकिन उसका उद्देश्य अपने देश को समृद्ध करना था इसलिए उसका कर्म कर्मयोग बन गया। जब रोजी-रोटी के लिए व्यक्ति सफाई कर्मचारी का कार्य कर रहा है; वह तो कर्म करता है; लेकिन कर्मयोग वह होता है जो सृष्टि के लिए होता है। मेरे कार्य की तनख्वाह तो मिलती है लेकिन मेरे कार्य से देश का भी भला हो यह विचार अगर मन में हो तो वह कर्मयोग बन जाता है। कर्मयोग की व्याख्या बिल्कुल सरल है। भगवान कहते हैं ऐसे जो लोग होते हैं उन्हें बड़ा सजग रहना पड़ता है। भगवान यह सब आगे के श्लोकों में विस्तार से कहते हैं:-

3.21

यद्यदाचरति श्रेष्ठः(स्), तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं(ङ्) कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते॥3.21॥

श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं।

विवेचन:-जैसा आचरण श्रेष्ठ पुरुष करते हैं वैसा ही अनुकरण अन्य लोग करते हैं जो प्रमाण सिद्ध कर देते हैं। समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार अनुकरण करता है उसी के दिखाए रास्ते पर चलता है। सच्चा कर्मयोगी वह है जो इस प्रकार का आदर्श खड़ा कर दे। इसमें शिवाजी जी का नाम सर्वप्रिय आता है। वे स्वयं अग्रसर होते थे। लाल महल पर छापा मारने स्वयं गए। अफजलखाँ को स्वयं जाकर अपने हाथों से मारा। जब व्यक्ति स्वयं जाता है तो पीछे काम करने वाले भी उसी ऊर्जा के साथ काम करते हैं। यदि नेतृत्व करने वालों में ऊर्जा नहीं है तो साथ काम करने वालों में भी वह नहीं आएगी। नेतृत्व करने वाला लीडर मुस्कुराता है तब सेना भी मुस्कुराती है। यदि सेनापति अपनी वीरता के साथ उदाहरण पेश करता है तो सेना भी उसी वीरता के साथ कार्य करती है।

सूबेदार तानाजी मालुसरे के पुत्र रायबा के विवाह की तैयारी हो रही थी। तानाजी मालुसरे छत्रपति शिवाजी महाराज को आमंत्रित करने पहुँचे। तब छत्रपति शिवाजी महाराज ने कोंढाणा पर चढ़ाई करने के लिए तानाजी की इच्छा जानना चाही। तब तानाजी ने कहा राजे मैं कोंढाणा पर आक्रमण करूँगा। अपने पुत्र रायबा के विवाह जैसे महत्वपूर्ण कार्य को महत्व न देते हुए उन्होने शिवाजी महाराज की इच्छा का मान रखते हुए कोंढाणा किला जीतना अधिक आवश्यक समझा।

शिवाजी कर्मयोगी थे। समर्थ रामदास जी शिवाजी के लिए श्रीमंतयोगी लिखते थे। यह दोनों चीजें साथ में होना कठिन है क्योंकि 'श्री' का मतलब ही लक्ष्मी है। लेकिन लक्ष्मी शुभ-लक्ष्मी होती है। दिवाली पर 'शुभ लाभ' लिखा जाता है। शुभ लाभ भी होता है पर वह लक्ष्मी श्री नहीं होती। केवल लक्ष्मी की उपासना करने से लक्ष्मी उल्लू पर बैठकर आती है लेकिन नारायण की उपासना करने पर गरुड़ पर बैठकर आती है। केवल लक्ष्मी जी की उपासना करने से उल्लू पर बैठकर आती है और सारे घर को उजाड़ कर चली जाती है लेकिन नारायण के साथ जो लक्ष्मी घर पर आती है तो वह कमला, गरूड़ वाहिनी, शुभ लक्ष्मी होती है। शिवाजी श्रीमंत के साथ कर्मयोगी भी थे।

3.22

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं(न्), त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं(वँ), वर्त एव च कर्मणि॥3.22॥

हे पार्थ! मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न (कोई) प्राप्त करने योग्य (वस्तु) अप्राप्त है, (फिर भी मैं) कर्तव्य कर्म में ही लगा रहता हूँ।

विवेचन:- भगवान को कुछ करने की क्या आवश्यकता थी। भक्त आ रहे हैं। भोग आ रहा है। खाओ पियो और मस्त रहो। फिर भी भगवान निरंतर कार्य में लगे रहते हैं। राजसूय यज्ञ में स्वयं जूठी पत्तल उठाने का काम करते हैं। बचपन में गाय चराने का काम करते थे। बड़े होकर रथ चलाने के लिए सारथी बन गए। युद्ध के समय सूर्यास्त के बाद भी कार्य करते रहते। अपने घोड़ों की देखभाल करते, उनको पानी पिलाते। उनकी चोटों पर मरहम लगाते। भगवान कृष्ण कर्म योगी थे। हमारे संत परंपरा में भी संत कर्मयोगी थे। कबीर बुनकर थे। कपड़ा बुनने का कार्य करते थे।

"चदरिया झीनी रे झीनी'।

महाराष्ट्र में एक माली किसान थे खेतों में काम करते थे। जब पंढरपुर जाने का समय आता तो वर्षा आती थी और खेतों में बहुत काम होता था तब वह कहते कि यह जो शाक सब्जियाँ उगा रहा हूँ वही मेरे विठोबा हैं; वही मेरे भगवान हैं और कर्म को ही भगवान मानते थे।

गोरा कुम्हार जब पानी और मिट्टी को एक साथ रौंदते थे। वे कहते थे इसी प्रकार काया, वाचा और मन से एक ही काम करने लग जाओ तब मन में भगवान का स्मरण और जो रूप दिखाई पड़ता है वह अद्‌भुत होता है।

रविदास (रैदास) जूता ठीक करते हैं। वे लिखते हैं-

"मन चंगा तो कठौती में गंगा'।

भगवान के चरणों की सेवा का भाव दूसरे के जूते ठीक करते समय वे करते हैं। यदि कोई व्यक्ति जूता ठीक कराने आता तो यह सोचकर कार्य करते थे कि भगवान के चरण-कमलों की सेवा कर रहा हूँ।

भाव अगर बदल जाए तो कर्म कर्मयोग बन जाता है। भगवान कहते हैं मुझे कर्म करने की जरूरत नहीं है फिर भी मैं करता हूँ।

3.23

यदि ह्यहं(न्) न वर्तेयं(ञ्), जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः(फ्) पार्थ सर्वशः॥3.23॥

क्योंकि हे पार्थ ! अगर मैं किसी समय सावधान होकर कर्तव्य-कर्म न करूँ (तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि) मनुष्य सब प्रकार से मेरे (ही) मार्ग का अनुसरण करते हैं। यदि मैं कर्म न करूँ, (तो) ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और (मैं) वर्णसंकरता को करने वाला होऊँ (तथा) इस समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ। (3.23-3.24)

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि मनुष्य जन्म में आया हूँ तो मैं सारे कार्य करूँगा क्योंकि मनुष्य मेरा ही अनुसरण करेगा। अगर मैं कुछ भी कार्य नहीं करूँगा तो वह भी कुछ नहीं करेगा।

एक बहरा व्यक्ति सत्संग में प्रतिदिन जाता था। उसको बिल्कुल भी सुनाई नहीं देता तो फिर भी सत्संग में जाकर बैठता था। किसी ने पूछा- तुम्हें तो कुछ भी सुनाई नहीं देता फिर क्यों आते हो? पहले व्यक्ति ने कहा, अगर मैं नहीं आऊँगा तो मेरे परिवार के सदस्य, पुत्र - पौत्र भी नहीं आएंगे। उनको संस्कार देने के लिए ही मैं यहाँ आता हूँ।

3.24

उत्सीदेयुरिमे लोका, न कुर्यां(ङ्) कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्याम्, उपहन्यामिमाः(फ्) प्रजाः॥3.24॥

विवेचन:- विचारों का जन्म विकारों को जन्म देता है। हमारा मन सही मार्ग पर चलता रहे इसलिए कर्म करना पड़ता है, अगर मनुष्य यह कहे कि भगवान कुछ नहीं कर रहे तो हम भी कुछ नहीं करेंगे तो जीवन तो जी लेंगे लेकिन मन खाली बना रहेगा। खाली मन में गलत विचार घुस जाते हैं और गलत विचार विकारों को जन्म देते हैं। विकारों से संकर हो जाएगा। खाली पड़े रहने से मन में शैतान घुस जाता है और शैतान घुसने से सारे अधिकार उठ जाते हैं काम, क्रोध, लोभ और कामनाएँ जाग जाती हैं और जब यह कामनाएँ जाग जाती हैं तो लोग गलत कर्म में भी लग जाते हैं। अच्छे कर्म से लोग बाहर निकल कर गलत कर्म में चले जाते हैं इसलिए मनुष्य को कुछ न कुछ कर्म करते रहना चाहिए।

3.25

सक्ताः(ख्) कर्मण्यविद्वांसो, यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्त:(श्), चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्॥3.25॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार (कर्म) करते हैं, आसक्ति रहित तत्त्वज्ञ महापुरुष (भी) लोक संग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार (कर्म) करे। सावधान तत्त्वज्ञ महापुरुष कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानी मनुष्यों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे, (प्रत्युत स्वयं) समस्त कर्मों को अच्छी तरह से करता हुआ (उनसे भी वैसे ही) करवाये। (3.25-3.26)

विवेचन:- केवल कर्म में आसक्त होने की बात नहीं है। हम किस प्रकार का कर्म कर रहे हैं, क्या उस कर्म में केवल आसक्ति और स्वार्थ है तो वह कर्म केवल कर्म ही रह जाएगा और ऐसा कर्म चिंता बढ़ाता है लेकिन जिस काम में स्वार्थ से भी ऊँची बात है वह कर्म ध्यान बढ़ाता है।

जब हमें किसी अच्छे सामाजिक कार्य में जाना हो तब जल्दी-जल्दी घर के कार्य निपटा कर वहाँ पर भी कर्म करते हैं और सेवा देते हैं। मन प्रसन्न हो जाता है। आसक्त रहित सेवा मन को प्रसन्न करती है। इसलिए आसक्ति रहित जो विद्वान होते हैं, वह लोक संग्रह करते हुए अच्छे कर्म करके सामाजिक कार्यों में योगदान देते हैं।

3.26

न बुद्धिभेदं(ञ्) जनयेद्, अज्ञानां(ङ्) कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि, विद्वान्युक्तः(स्) समाचरन्॥3.26॥

विवेचनः- हमें लोगों को कभी आलसी नहीं बनाना चाहिए। मुफ्त में चावल, आटा, दाल, चीनी देने से देश का सत्यानाश हो जाएगा। जब लोग कर्म नहीं करेंगे तो गलत कर्म ही करेंगे। लोगों को कर्म से कर्मयोग सिखाना होगा। हम सब पुरुषार्थ करें और कुछ कर्म करते रहें। जो मुफ्त में राशन लेते हैं और राशन सरकार से लेकर फिर उसे बेचकर शराब पी जाते हैं। मनुष्य खाली नहीं बैठता। कुछ तो काम करना ही होगा, अगर खाली भी बैठेंगे तो भी कुछ कर्म करते रहना पड़ता है। कर्म तो हर क्षण करना पड़ता है। अगर हाथ से कर्म नहीं कर रहे और कोई सुनने का कार्य कर रहे हैं तो भी वह एक प्रकार का कर्म ही है। अपने अनुयायियों को जो कार्य देते हैं तो उन्हें उसकी क्षमता के अनुसार काम देना चाहिए। जो मैं कर रहा हूँ, वह भी वही करे यह संभव नहीं है। जैसे माँ छोटे बच्चों को दूध पिलाती है; बड़े को मिठाई खाने को देती है। अगर बड़े को दूध दे और छोटों को मिठाई दे तो छोटे बेटे का पेट खराब हो जाएगा। इसलिए हमारे लिए जो काम करने वाले लोग हैं उनको उनकी क्षमता के अनुसार कार्य देना चाहिए। हमारे देश में शास्त्रों को ऋषि-मुनियों ने परंपरा से जोड़ दिया है कि जैसे जूठा नहीं खाना, जूठे हाथ से मटके में से पानी नहीं लेना। इसके पीछे भी विज्ञान है करोना काल में स्पर्श का महत्व समझ में आया था और शुद्धता की आदत-सी हो गई।

3.27

प्रकृतेः(ख्) क्रियमाणानि, गुणैः(ख्) कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा, कर्ताहमिति मन्यते॥3.27॥

सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं; (परन्तु) अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला अज्ञानी मनुष्य 'मैं कर्ता हूँ' -- ऐसा मान लेता है।

विवेचनः- हम जो भी कार्य करते हैं हम उसके निमित्त बने हैं। यह भाव सदा मन में रखना चाहिए। जब कोई दान देता है तो वह भी उसके निमित्त ही बना होता है।

एक राजा था। जब दान देता था तो उसकी आँखें भूमि की तरफ कर लेता था किसी ने पूछा कि आप ऊपर देखकर क्यों नहीं देते तो राजा ने कहा के ऊपर कर देने से लेने वाला मुझे प्रणाम करेगा इससे अहंकार बढ़ेगा। मुझे देने वाला दे रहा है और मैं दे रहा हूँ। मैं तो केवल माध्यम हूँ। देने वाला तो भगवान है और उसका दिया हुआ देने से मेरे मन में अहंकार आ जाए कि मैं दे रहा हूँ तो देने से जो पुण्य मिल रहा है; वह क्षीण हो जाएगा। इसलिए नीचे झुक जाता हूँ। जैसे-जैसे हाथ ऊपर उठते हैं; वैसे-वैसे निगाह नीचे झुक जाती है ताकि अहंकार मेरे मन को स्पर्श न करें। अहंकार तो सर्वनाश का कारण है।

3.28

तत्त्ववित्तु महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त, इति मत्वा न सज्जते॥3.28॥

परन्तु हे महाबाहो! गुण-विभाग और कर्म-विभाग को तत्त्व से जानने वाला महापुरुष 'सम्पूर्ण गुण (ही) गुणों में बरत रहे हैं' -- ऐसा मानकर (उनमें) आसक्त नहीं होता।

विवेचनः- केवल तमोगुण से रजोगुण, रजोगुण से सतोगुण तक ही नहीं पहुँचना बल्कि इसके भी ऊपर उठना होगा गुणातीत होना होगा।

3.29

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः(स्), सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्, कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥3.29॥

प्रकृति जन्य गुणों से अत्यन्त मोहित हुए अज्ञानी मनुष्य गुणों और कर्मों में आसक्त रहते हैं। उन पूर्णतया न समझने वाले मन्द बुद्धि अज्ञानियों को पूर्णतया जानने वाला ज्ञानी मनुष्य विचलित न करे।

विवेचन:- सहज भाव मन में भरे। सहज भाव, सहज स्वीकृति भी प्रदान करता है। किसी ने गाली दी, मैंने नहीं ली। मैंने स्वीकार कर लिया कि उसका स्वभाव ही ऐसा है। मुझे दर्द नहीं होता। सहज भाव बड़ा महत्वपूर्ण है। ज्ञानी गाली देने से विचलित नहीं होते। जगत बहुत विशाल है। हाथ में छोटी-बड़ी उंगलियाँ है और एक जैसी होने पर काम भी नहीं होगा। उसी प्रकार देश में विभिन्न प्रकार के स्वभाव वाले लोग हैं उन्हें हमे सहज ही स्वीकार करना होगा। अलग-अलग स्वभाव के लोगो से मिलने से मैं समृद्ध बनता जा रहा हूँ। यह सोच हमें सुख प्रदान करेगी।

3.30

मयि सर्वाणि कर्माणि, सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा, युध्यस्व विगतज्वरः॥3.30॥

(तू) विवेकवती बुद्धि के द्वारा सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों को मेरे अर्पण करके कामना रहित, ममता रहित (और) संताप रहित होकर युद्ध रूप कर्तव्य कर्म को कर।

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि तू कर्म कर और मुझे अर्पण कर दे। भगवान की भक्ति का सबसे आसान तरीका भक्तियोग में बताया गया है। मनुष्य कर्म करते हुए भगवान को अर्पण कर दे और फल की अपेक्षा ना करें। जिस दिन मन से फल प्राप्त करने की इच्छा समाप्त हो जाती है, उसी दिन तुम्हारी योग्यता बढ़ जाती है।

अगर कोई बच्चा प्रथम आने के लिए पढ़ाई में मेहनत करता है तो कभी भी प्रथम नहीं आ पाता परंतु अगर प्रथम न आने की सोच कर सिर्फ मेहनत से पढ़ाई करता है तो उसकी योग्यता बढ़ जाती है और वह प्रथम भी आ जाता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए पढ़ाई करने से सफलता मिलती है।

3.31

ये मे मतमिदं(न्) नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो, मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥3.31॥

जो मनुष्य दोष-दृष्टि से रहित होकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस (पूर्व श्लोक में वर्णित) मत का सदा अनुसरण करते हैं, वे भी कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

विवेचन:- कर्मों से छुटकारा पाने का अर्थ यह नहीं है कि कर्म करना बंद करना है बल्कि अगर फल की अपेक्षा नहीं करेंगे तो हमें कर्मों के बंधन से छुटकारा मिल जाएगा। कर्म से छुटकारा नहीं मिलेगा। अगर घर बैठे हैं तो भी सांस लेना भी एक कर्म है और सो रहे हैं तो सोना भी एक कर्म है।

3.32

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो, नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्, विद्धि नष्टानचेतसः॥3.32॥

परन्तु जो मनुष्य मेरे इस मत में दोष-दृष्टि करते हुए (इसका) अनुष्ठान नहीं करते, उन सम्पूर्ण ज्ञानों में मोहित (और) अविवेकी मनुष्यों को नष्ट हुए (ही) समझो अर्थात् उनका पतन ही होता है।

विवेचन:- कर्म बंधन से छुटकारा तभी मिलेगा जब हम फल प्राप्त करने की इच्छा से बाहर निकल आएंगे। यह बात जिन्हें समझ में नहीं आएगी, वे मूर्ख ही कहलायेंगे जिन को सब कुछ मालूम है फिर भी वह मन में यह मान लेते हैं कि उन्हें कुछ नहीं पता। उन्हें मोहित और नष्ट समझ लेना चाहिए। इनका सब नष्ट हो जाएगा।

3.33

सदृशं(ञ्) चेष्टते स्वस्याः(फ्), प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं(यँ) यान्ति भूतानि, निग्रहः(ख्) किं(ङ्) करिष्यति॥3.33॥

सम्पूर्ण प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं। ज्ञानी महापुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। (फिर इसमें) किसी का हठ क्या करेगा?

विवेचन:- सभी प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात अपने स्वभाव वश ही कर्म करते हैं। ज्ञानी भी प्रकृति के अनुसार कर्म करता है। इसमें फिर किसी का हठ कुछ नहीं करेगा।

3.34

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे, रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्, तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥3.34॥

इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में (प्रत्येक इन्द्रिय के प्रत्येक विषय में) (मनुष्य के) राग और द्वेष व्यवस्था से (अनुकूलता और प्रतिकूलता को लेकर) स्थित हैं। (मनुष्य को) उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके (पारमार्थिक मार्ग में) विघ्न डालने वाले शत्रु हैं।

विवेचन:- पाँच इंद्रियाँ (नाक, कान, जिह्वा, आँख, त्वचा) छठा मन, इन सबके अपने - अपने विषय हैं जैसे आँख का देखना, कान का सुनना, जिह्वा का रस, त्वचा का स्पर्श। हर विषय में राग-द्वेष छुपे होते हैं। मनुष्य को इन दोनों में फंसना नहीं चाहिए। दोनों ही कल्याण मार्ग में विघ्न पहुंचाने वाले महान शत्रु हैं। बारहवें अध्याय में भी पढ़ा है:-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।।

द्वेष से रहित हो जाना चाहिए किसी के लिए अपने मन में द्वेष की भावना न रखें।

3.35, 3.36, 3.37

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः(फ्), परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं(म्) श्रेयः(फ्), परधर्मो भयावहः॥3.35॥
अर्जुन उवाच
अथ केन प्रयुक्तोऽयं(म्), पापं(ञ्) चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय, बलादिव नियोजितः॥3.36॥
श्रीभगवानुवाच
काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥3.37॥

अच्छी तरह आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणों की कमी वाला अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म में (तो) मरना (भी)

कल्याणकारक है (और) दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।
अर्जुन बोले - हे वार्ष्णेय ! फिर यह मनुष्य न चाहता हुआ भी जबर्दस्ती लगाये हुए की तरह किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है?
श्रीभगवान् बोले – रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम अर्थात् कामना (ही पाप का कारण है)। यह (काम ही) क्रोध (में परिणत होता) है। (यह) बहुत खाने वाला (और) महापापी है। इस विषय में (तू) इसको (ही) वैरी जान।

विवेचन:-भगवान कहते हैं सबसे बड़ा पाप, बैरी कौन है मैं बताता हूँ। रजोगुण से उत्पन्न काम-क्रोध यह सबसे बड़े बैरी हैं। अगर क्रोध सबसे बड़ा बैरी है तो यह बार-बार क्यों आता है। एक श्लोक में कहा है कि नरक के तीन रास्ते हैं

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

इन तीनों चीजों का त्याग करना बहुत बड़ा कार्य है क्योंकि यह तीनों नर्क के दरवाजे हैं- काम, क्रोध, लोभ। नरक का विवरण में लिखा होता है कि जैसे हम नरक के द्वार पर पहुँचते हैं तो खौलते तेल में डाला जाता है। वास्तव में जीते जी ही मनुष्य नरक में जाता है। जब भी क्रोध आता है हम विवेक खो देते हैं। बुद्धि से काम नहीं करते गाली गलौज से बात करते हैं। खून उबलता है तो वह नर्क के कार्य है। यह तो बहुत ही भयंकर है।

3.38

धूमेनाव्रियते वह्निः(र्), यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भ:(स्), तथा तेनेदमावृतम्॥3.38॥

जैसे धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढका जाता है (तथा) जैसे जेर से गर्भ ढका रहता है, ऐसे ही उस कामना के द्वारा यह (ज्ञान अर्थात् विवेक) ढका हुआ है।

विवेचन:- काम क्रोध आने पर ज्ञान ढक जाता है। अग्नि को जैसे, धुआँ आवरण से ढक कर बुझा देता है और राख निकाल कर फिर अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। उसी प्रकार काम और क्रोध मनुष्य के ज्ञान को आवरण से ढक देता है। जिस तरह गर्भ में ज़ेर के आवरण से बच्चा ढका रहता है और जब तक बच्चा गर्भ में होता है तब तक अपनी बात नहीं कर पाता उसी प्रकार काम-क्रोध होने पर मनुष्य के ज्ञान पर एक आवरण आ जाता है।

3.39

आवृतं(ञ्) ज्ञानमेतेन, ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय, दुष्पूरेणानलेन च॥3.39॥

हे कुन्तीनन्दन ! इस अग्नि के (समान) (कभी) तृप्त न होने वाले और विवेकियों के कामना रूप नित्य वैरी के द्वारा (मनुष्य) का विवेक ढका हुआ है।

विवेचन:-कामनाएं कभी पूर्ण नहीं होती। एक समाप्त होती है। फिर एक नई कामना शुरू हो जाती है लेकिन जिसको इसका ज्ञान हो जाता है। वह वास्तव में अंदर के क्रोध को समाप्त कर देगा। इसलिए इंद्रियों का निग्रह करना बड़ा महत्वपूर्ण है।

3.40

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः(र्), अस्याधिष्ठानमुच्यते।

एतैर्विमोहयत्येष, ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥3.40॥

इन्द्रियाँ, मन (और) बुद्धि इस कामना के वास स्थान कहे गये हैं। यह कामना इन (इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि-) के द्वारा ज्ञान को ढककर देहाभिमानी मनुष्य को मोहित करती है।

विवेचन:- इंद्रियां और कामनाएं हमारी पाँचों इंद्रियों में ही वास करती हैं। यह पाँच इंद्रियां प्रकृति की देन है। लेकिन यह आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकती क्योंकि आत्मा परमात्मा की देन है। प्रकृति की देन यह पांच महाभूतो से बना शरीर है। मन, बुद्धि और अहंकार यह सब हमें प्रकृति से ही प्राप्त हुए हैं। रजोगुण जो कि प्रकृति का गुण है, इसमें समाहित हो जाता है जिसके कारण मन, बुद्धि और इंद्रियों के द्वारा जीवात्मा को मोहित कर देता है और उसके ज्ञान को ढक देता है जैसे जीवात्मा तो गाड़ी पर बैठा हुआ मालिक है और गाड़ी का स्टेरिंग पाँचों इंद्रियों के हाथ में है। मालिक गाड़ी में पीछे बैठा हुआ है। अगर गाड़ी को ड्राइवर रूपी इंद्रिय जब किसी के साथ टक्कर मारेगी तो मालिक रूपी जीवात्मा को भी चोट लगेगी और यदि ड्राइवर ठीक से गाड़ी चलाएगा तो आत्मा परमगति को प्राप्त होगी। फिर क्या करें? यह आगे के श्लोकों में भगवान बता रहे हैं:-

3.41

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ, नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं(म्) प्रजहि ह्येनं(ञ्), ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥3.41॥

इसलिये हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! तू सबसे पहले इन्द्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले महान पापी काम को अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

विवेचन -भगवान कहते हैं - हे अर्जुन ! तू इंद्रियों को वश में करके इस ज्ञान विज्ञान का नाश करने वाले महान पापी काम को बलपूर्वक मार दे। ज्ञान विज्ञान को उजागर करने के लिए इंद्रियों को वश में करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। अगर काम, लोभ, क्रोध और कामनाओं को मारना है तो इंद्रियों को अपने नियंत्रण में करना होगा। इसीलिए भगवान कहते हैं-:

3.42

इन्द्रियाणि पराण्याहु:(र्), इन्द्रियेभ्यः(फ्) परं(म्) मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि:(र्), यो बुद्धेः(फ्) परतस्तु सः॥3.42॥

इन्द्रियों को (स्थूल शरीर से) पर (श्रेष्ठ, सबल, प्रकाशक, व्यापक तथा सूक्ष्म) कहते हैं। इन्द्रियों से पर मन है, मन से भी पर बुद्धि है (और) जो बुद्धि से भी पर है, वह (काम) है। इस तरह बुद्धि से पर (काम) को जानकर अपने द्वारा अपने आपको को वश में करके हे महाबाहो ! (तू इस) कामरूप दुर्जय शत्रु को मार डाल। (3.42-3.43)

विवेचन:-इंद्रियों से ऊपर हमारा मन, मन से ऊपर बुद्धि, बुद्धि से ऊपर हमारी आत्मा है। भगवान अर्जुन से कह रहे हैं कि तू इस बात को समझ ले। मन से काम करने से ज्यादा अच्छा है कि हम बुद्धि और विवेक से काम करें।

3.43

एवं(म्) बुद्धेः(फ्) परं(म्) बुद्ध्वा, संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं(म्) महाबाहो, कामरूपं(न्) दुरासदम्॥3.43॥

विवेचन -भगवान अर्जुन से कह रहे हैं हे अर्जुन! तू इस बात को समझ ले कि इंद्रियों से परे हमारा मन, मन से ऊपर बुद्धि और बुद्धि से ऊपर हमारी आत्मा है। मन से काम करने से ज्यादा अच्छा है कि हम बुद्धि और विवेक से काम करें। हे अर्जुन ! कामनाएँ, क्रोध, लोभ ये सब शत्रु हैं। तू इनसे ऊपर उठकर बुद्धि से मन को वश में करके इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर।

इस प्रकार एक सुंदर ज्ञानवर्धक विवेचन भगवान के संकीर्तन के साथ समाप्त हुआ।

प्रश्नोत्तर:-

प्रश्न कर्ता :-जया दीदी

प्रश्न:- मुनि ज्ञानी होकर भी जरा सी बात पर क्रोधित होकर श्राप दे देते हैं फिर उनके ज्ञान का क्या फायदा होता है?
उत्तर:- यह बात बिल्कुल सही है। विश्वामित्र एक ऋषि थे उनको ब्रह्मर्षि होने के लिए बहुत तपस्या करनी पड़ी। उनका बार-बार पतन होता रहा। ये शरीर प्रकृति का दिया हुआ है। ऋषियों की भी अलग - अलग श्रेणी होती थी जैसे राजर्षी, महर्षि और ब्रह्मर्षि। जिसको ज्ञान हो जाए जरूरी नहीं कि उसका आचरण भी सही हो। ज्ञान होना अलग बात है और आचरण द्वारा उस मार्ग पर चलना अलग बात है। इस तरह ऋषियों को ज्ञान तो हो जाता है लेकिन उस मार्ग पर चलते-चलते उनकी प्रकृतिवश उन्हें क्रोध आ जाता है फलत: वे फिर एक सीढ़ी नीचे आ जाते थे; फिर से शुरू करना पड़ता था और यह चक्र चलता रहता था, इसलिए कहते हैं:-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।।

इनसे हमें निकलना है इसलिए भगवान कहते हैं कि अगर तुझे कुछ भी नहीं आता तो अपने कर्म कर और उसके फल को मुझे अर्पण कर दे और आसानी से अपने मार्ग पर आगे बढ़ता रह।

प्रश्न कर्ता:- जया दीदी

प्रश्न:- इंद्रदेव इतनी बड़ी पदवी पाने के बाद भी हमेशा अपने आप को असुरक्षित क्यों अनुभव करते थे?

उत्तर:- आम मनुष्य और मंत्री में कोई अंतर नहीं है। दोनों ही शरीर हैं। मंत्री एक पद है और इसके ऊपर अलग-अलग व्यक्ति आकर आसीन होते हैं जैसे प्रधानमंत्री कई हुए। अटल बिहारी वाजपेयी आए और अब इस पद पर नरेन्द्र मोदी हैं परंतु कुछ लोग पतित भी हो जाते हैं क्योंकि प्रकृति के राजस गुण के कारण मनुष्य में कामनाएं आ जाती हैं और यह गुण स्वार्थ और अहम् के कारण अपने आप आ जाता है। यह मार्ग रस्सी पर चलने जैसा कठिन मार्ग हैं। इस पर से कब झुक जाए, कब गिर जाए, इसका कोई भरोसा नहीं है इसी अध्याय में भगवान कहते हैं कि अखंड सावधान रहना होगा।

भगवान और देवता, अलग - अलग हैं। देवता अपनी तपस्या से पद तो प्राप्त कर लेते हैं लेकिन उस पद को पाने के बाद, उस पद पर बने रहने के लिए और तपस्या नहीं करते इसलिए उनका पतन हो जाता है फिर एक सीढ़ी नीचे गिर जाते हैं। भोग में ज्यादा भ्रमित रहते हैं। जितना ऊँचा मनुष्य जाएगा उतने ही ज्यादा मोह के क्षण आएंगे। उतने ही संकट से घिर जाएगा। ऐसे में अपने समत्व को बनाए रखना ही तो योग है। इसलिए कहते हैं:-

समत्वं योग उच्यते।

प्रश्नकर्ता:- बजरंग भैया जी।
प्रश्न:- कर्म धर्म है और धर्म से पुण्य मिलता है। अगर कोई कर्तव्य वचनबद्ध होने के कारण, जबरदस्ती या अनजाने होता है तो भी क्या थोड़ा पुण्य मिल सकता है या नहीं?

उत्तर:- अगर अच्छा कार्य जबरदस्ती से भी हो जाता है तो भी पुण्य मिलता है और गलती से अगर गलत काम हो जाता है तो पाप भी मिलता है। पाप और पुण्य, दोनों हमें यहीं मिलेंगे। मन के भाव से पता चलता है कि हमारा जीवन कैसा था और यह इस पर निर्भर करता है कि अंतिम समय में हमारे मन में कोई कांटे नहीं रहने चाहिए। बारहवें अध्याय में भगवान कृष्ण ने कहा है कि:-

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

जीवन के अंतिम क्षण में मन में संतुष्टि होनी चाहिए। जैसे भाई का भाई से अदालत में जायदाद के लिए झगड़ा हो जाता है और एक भाई अपना अंत में हिस्सा छोड़ देता है। लेकिन अंतिम समय तक उसके मन में यह कांटा रहता है कि भाई ने मेरा हिस्सा छीन लिया और अगर मन में से यह यह कांटा निकाल दे कि उसको ज्यादा मिल गया और प्रसन्न रहे क्योंकि जमीन पाने से उतना कल्याण नहीं है जितना संतुष्टि से कल्याण है अगर लोभ का कांटा मन में रह गया तो यह कांटा मन को आत्मा से चिपकायेगा और आकांक्षा पूरी करने के लिए फिर पुनर्जन्म होगा। अगर मन, निर्मल, पवित्र और विकारों से मुक्त हो जाए तो मन आत्मा से चिपक कर नहीं जाता। आत्मा को गलत दिशा में नहीं ले जाता। मन में हमेशा एक ही विचार चलता है या तो नकारात्मकता का या सकरात्मकता का।

एक विचार जाने के बाद ही दूसरा विचार मन में आता है और जब तक विचार रहेंगे तब तक भगवान भी मन में नहीं आएंगे इसलिए सूक्ष्म- सूक्ष्म विचारों को भी मन में नहीं रखना चाहिए और तभी मन के अंदर भगवान प्रवेश कर पाएंगे।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्याय:॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'कर्मयोग' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||